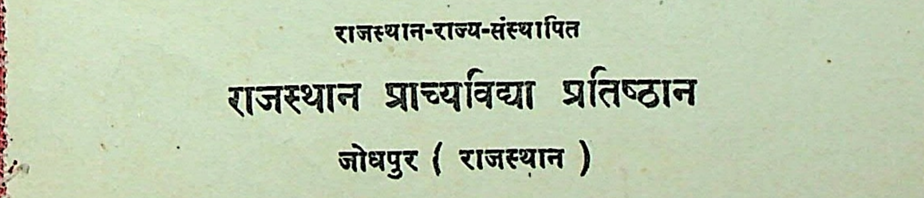
राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक–फतहसिंह, एम. ए., डी. लिट्.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ६२

नन्दोपाख्यान



प्रकाशक

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR.

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – फतहसिंह, एम. ए., डी. लिट्.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ९२

नन्दोपाख्यान

प्रकाशक

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

१९६८ ई०

प्रथमावृत्ति ७५०　　　　　　　　मूल्य १.००

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान-राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यत: अखिलभारतीय तथा विशेषत: राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट-ग्रन्थावली

प्रधान सम्पादक

फतहसिंह, एम. ए., डी. लिट्.

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

ग्रन्थाङ्क ९२

नन्दोपाख्यान

प्रकाशक

राजस्थान-राज्याज्ञानुसार

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

१९६८ ई०

वि० सं० २०२४ भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८९

प्रधान-सम्पादकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ का मुद्रण सन् १९५२ में हो चुका था, परन्तु किन्हीं कारणों से इसका प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका था। अतः इस भूमिका के साथ इस ग्रन्थ को पाठकों के हाथों में देते हुए मुझे हर्ष और सन्तोष का अनुभव हो रहा है।

इस ग्रन्थ में नन्द-कथा पर आधारित ३ काव्यों का संकलन हुआ है जिनके नाम निम्नलिखित हैं—

१. नन्दोपाख्यानम्
२. नन्दबत्रीसी
३. नन्दनृपकथा, सहस्रऋषिकृत

इनमें से नन्दबत्रीसी में कथा अत्यन्त संक्षिप्त है और उसकी भाषा भी सर्वथा शुद्ध नहीं है। पुस्तक के अन्त में पं० तत्त्वविजय गणि द्वारा इस ग्रंथ का लिखित होना बताया गया है। अन्य दो कथानकों में से सहस्रऋषि-कृत नन्दनृप-कथा में पूरी कथा सौ श्लोकों में समाप्त हुई है और इसके कर्त्ता को सियालकोट का निवासी तथा रचनाकाल संवत् १६६६ भाद्रपद बतलाया गया है, परन्तु नन्दोपाख्यान में १०६ श्लोकों के अतिरिक्त बीच-बीच में पर्याप्त गद्यांश भी मिलता है। नंदोपाख्यान के रचनाकार का नाम नहीं मिलता, परंतु प्रस्तुत ग्रंथ में संकलित नन्दोपाख्यान जिस प्रति पर आधारित है वह किसी देव-नामक व्यक्ति द्वारा सं० १७३१ में तैयार की गई थी। इसके गद्य और पद्य-भाग बड़ी ही सरल संस्कृत में लिखे हुए हैं। छोटे-छोटे वाक्य हैं और समास भी प्रायः दो पदों वाले ही हैं। व्याकरण के क्लिष्ट रूपों का सर्वथा अभाव है तथा कम से कम लकारों का प्रयोग हुआ है। भाषा की दृष्टि से यह प्रसाद-गुणयुक्त काव्य है। संस्कृत सीखने वाले प्रारम्भिक व्यक्तियों के लिए यह हितोपदेश से भी सरल है।

नन्द की कथा नैतिक शिक्षा की दृष्टि से लिखी गई है। परनारी के प्रति कुदृष्टि रखना घातक है और 'मातृवत्परदारेषु' का सिद्धान्त ही स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए परमावश्यक है। मुख्यतः इसी शिक्षा को देने के लिए राजा नन्द की कथा को इन काव्यों में स्थान मिला है, साथ ही प्रासंगिक रूप में पितृभक्ति, पातिव्रत-धर्म तथा राजनीति की शिक्षा का भी समावेश यत्र-तत्र हुआ है।

राजाओं और राजपुरुषों की कुछ स्वाभाविक दुर्बलताओं के कारण किस प्रकार राज्यों में षड्यंत्र, हत्याकाण्ड तथा प्रतिशोध आदि हुआ करते थे उसकी भी कुछ झलक यहाँ प्राप्त हो सकती है ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस ग्रंथ की सब से बड़ी विशेषता भाषागत सरलता है । अतः इसके यहाँ पर कुछ उदाहरण दे देना अनुचित न होगा । उदाहरण के लिए एक पुरुष रात में किसी दूसरे व्यक्ति से अपने घर की याद करता हुआ कहता है—

"माता नास्ति पिता नास्ति नास्ति भ्राता कुटुम्बकः ।
एकाकिनी च मे भार्या कथं रात्रिर्गमिष्यति ।।"

कहीं-कहीं पर दूसरे ग्रंथों से भी कुछ सुभाषितों को ले लिया है । इसी प्रकार के निम्नलिखित पद्य पंचतंत्र से संगृहीत हुए हैं—

"दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।
तावद् भयाच्च भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशंकितैः ।।"

प्रस्तुत ग्रंथ में समाविष्ट आख्यान के तीनों संस्करण इस प्रकार के उन अनेक ग्रंथों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं जो इस प्रतिष्ठान में संगृहीत हैं और जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि हमारे देश में भाषा सिखाने की दृष्टि से इस प्रकार का सरल काव्य-साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया । इस प्रकार की रचनाओं का प्रयोग अब भी संस्कृत के प्रचार और प्रसार में सहायक हो सकता है, इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन किया जा रहा है । आशा है संस्कृत के शिक्षक और प्रचारक इस प्रकार के साहित्य से लाभ उठावेगा ।

९-२-६८
जोधपुर

फतहसिंह

नन्दोपाख्यानम् ।

ॐ नमः सर्व्वज्ञाय ।

नन्दभद्रपुरं नाम धरामध्ये मनोहरम् ।
धनधान्यसमाकीर्णं सर्व्वदेवमनोत्सवम् ॥ १ ॥
तत्र चाभून्महीपालो नन्दनामा महाबलः ।
धर्मशास्त्रप्रवीणश्च नीतिवान् गुणवत्सलः ॥ २ ॥
विप्रा वेदविदस्तत्र सुखिनः पौरवासिनः ।
मेघश्च कामवर्षी च हेमपुष्पा च मेदिनी ॥ ३ ॥
तत्र नन्दो महाराजा नन्दराज्ञी पतिव्रता ।
वैरोचनो ह्यमात्यश्च सुन्दरी तस्य गेहिनी ॥ ४ ॥
यादृशं नाम वै तस्या रूपं तादृक् प्रवर्त्तते ।
यादृशी मेनका रम्भा सर्व्वाभरणभूषिता ॥ ५ ॥
रूपयौवनशोभाढ्या सदा मधुरभाषिणी ।
पतिव्रता च साध्वी च उत्पन्ना विमले कुले ॥ ६ ॥
एकस्मिन् दिवसे सा स्त्री गवाक्षे गानमारभत् ।
अधस्ताद् गच्छता राज्ञा गानमश्रावि शोभनम् ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा तत्र राजा च काममोहवशंगतः ।
तत्र स्थित्वा क्षणं राजा ऊर्ध्वदृष्टिं चकार सः ॥ ८ ॥
केयं कस्यापि भार्या च कस्येदं भवनं शुभम् ।
एतन्मनसि संचिन्त्य राजा तत्र विमोहितः ॥ ९ ॥

एतस्मिन्नवसरे राजा मूर्च्छांगतः सन् पुरोहितेन दृष्टः । पुरोहितेन चिन्तितम् । किमिदं हा देव ! कथं राजा भुवि पतितः । उपर्यागत्य राज्ञो मुखं विलोक्य राजानं प्रति वाक्यमुक्तम् । हे आर्य राजन् ! उत्थीयताम् । पश्य त्वं नयचक्षुषा । महतामवस्था कथमीदृशी । तथा पुरोहितवचनाद् राजा संप्रबुद्धः । विलोक्य पुरोहितं प्रत्युक्तम् । अहमेकान्ते कथयिष्यामि । तदा पुरोहितेन सर्वं मनसि ज्ञात्वा राजानं प्रति वाक्यमुक्तम् ।

शृणुं त्वं च महाराज ! वैरोचनमिदं गृहम् ।
तस्य भार्या तथैवेयमुपायेन ददामि ते ॥ १० ॥

राजाओं और राजपुरुषों की कुछ स्वाभाविक दुर्बलताओं के कारण किस प्रकार राज्यों में षड्यंत्र, हत्याकाण्ड तथा प्रतिशोध आदि हुआ करते थे उसकी भी कुछ झलक यहाँ प्राप्त हो सकती है ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस ग्रंथ की सब से बड़ी विशेषता भाषागत सरलता है । अतः इसके यहाँ पर कुछ उदाहरण दे देना अनुचित न होगा । उदाहरण के लिए एक पुरुष रात में किसी दूसरे व्यक्ति से अपने घर की याद करता हुआ कहता है—

"माता नास्ति पिता नास्ति नास्ति भ्राता कुटुम्बकः ।
एकाकिनी च मे भार्या कथं रात्रिर्गमिष्यति ।।"

कहीं-कहीं पर दूसरे ग्रंथों से भी कुछ सुभाषितों को ले लिया है । इसी प्रकार के निम्नलिखित पद्य पंचतंत्र से संगृहीत हुए हैं—

"दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।
तावद् भयाच्च भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशंकितैः ।।"

प्रस्तुत ग्रंथ में समाविष्ट आख्यान के तीनों संस्करण इस प्रकार के उन अनेक ग्रंथों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं जो इस प्रतिष्ठान में संगृहीत हैं और जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि हमारे देश में भाषा सिखाने की दृष्टि से इस प्रकार का सरल काव्य-साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया । इस प्रकार की रचनाओं का प्रयोग अब भी संस्कृत के प्रचार और प्रसार में सहायक हो सकता है, इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन किया जा रहा है । आशा है संस्कृत के शिक्षक और प्रचारक इस प्रकार के साहित्य से लाभ उठावेगा ।

१–२–६८
जोधपुर

फतहसिंह

नन्दोपाख्यानम् ।

उँ नमः सर्व्वज्ञाय ।

नन्दभद्रपुरं नाम धरामध्ये मनोहरम् ।
धनधान्यसमाकीर्णं सर्व्वदेवमनोत्सवम् ॥ १ ॥
तत्र चाभून्महीपालो नन्दनामा महाबलः ।
धर्मशास्त्रप्रवीणश्च नीतिवान् गुणवत्सलः ॥ २ ॥
विप्रा वेदविदस्तत्र सुखिनः पौरवासिनः ।
मेघश्च कामवर्षी च हेमपुष्पा च मेदिनी ॥ ३ ॥
तत्र नन्दो महाराजा नन्दराज्ञी पतिव्रता ।
वैरोचनो ह्यमात्यश्च सुन्दरी तस्य गेहिनी ॥ ४ ॥
यादृशं नाम वै तस्या रूपं तादृक् प्रवर्तते ।
यादृशी मेनका रम्भा सर्व्वाभरणभूषिता ॥ ५ ॥
रूपयौवनशोभाढ्या सदा मधुरभाषिणी ।
पतिव्रता च साध्वी च उत्पन्ना विमले कुले ॥ ६ ॥
एकस्मिन् दिवसे सा स्त्री गवाक्षे गानमारभत् ।
अधस्ताद् गच्छता राज्ञा गानमश्रावि शोभनम् ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा तत्र राजा च काममोहवशंगतः ।
तत्र स्थित्वा क्षणं राजा ऊर्ध्वदृष्टिं चकार सः ॥ ८ ॥
केयं कस्यापि भार्या च कस्येदं भवनं शुभम् ।
एतन्मनसि संचिन्त्य राजा तत्र विमोहितः ॥ ९ ॥

एतस्मिन्नवसरे राजा मूर्च्छांगतः सन् पुरोहितेन दृष्टः । पुरोहितेन चिन्तितम् । किमिदं हा देव ! कथं राजा भुवि पतितः । उपर्यागत्य राज्ञो मुखं विलोक्य राजानं प्रति वाक्यमुक्तम् । हे आर्य राजन् ! उत्थीयताम् । पश्य त्वं नयचक्षुषा । महतामवस्था कथमीदृशी । तथा पुरोहितवचनाद् राजा संप्रबुद्धः । विलोक्य पुरोहितं प्रत्युक्तम् । अहमेकान्ते कथयिष्यामि । तदा पुरोहितेन सर्वं मनसि ज्ञात्वा राजानं प्रति वाक्यमुक्तम् ।

शृणुं त्वं च महाराज! वैरोचनमिदं गृहम् ।
तस्य भार्या तथैवेयमुपायेन ददामि ते ॥ १० ॥

राजोवाच । साधु साधु पुरोहित ! येनकेनाप्युपायेन सा स्त्री मया समं क्रीडाविलासं करोति तथा कुरु । एवं श्रुत्वा तदा राजा स्वगृहं प्रतिनिवृत्तः । विप्रोऽपि निजमन्दिरं गतः ।

विप्रेण कारिता दूती त्वं याहि मन्त्रिमन्दिरम् ।
वैरोचनस्य या भार्या राज्ञोऽर्थे तां नियोजय ॥ ११ ॥

दूतिकोवाच । अतीव सुन्दरम् । एवं करिष्यामि । ततो निष्क्रान्ता दूती । वैरोचनगृहे गता यत्रास्ति सुरसुन्दरी । दूतीं दृष्ट्वा सुन्दरी वाक्यमुवाच । हे सखि ! किमर्थमागतासि त्वम् । तयोक्तं सखित्वेन । तदा दूतिकया गृहमध्ये वैरोचन उपविष्टो दृष्टः । तदा वेगेन निवृत्ता गता यत्र पुरोहितोऽस्ति । तया दूत्योक्तम् । हे स्वामिन्! वैरोचनो गृहमध्ये विद्यते । यत् त्वं एनं मन्त्रिणं उपायं कृत्वा ग्रामान्तरं प्रेषय । वैरोचने गते सति राजानमहं गृहीत्वा सुन्दरीभवने यास्यामीति। विप्रेणोक्तं सत्यम्। तदा पुरोहितो राज्ञः समीपं गतः । राज्ञोऽग्रे सर्वं वृत्तान्तं निवेदितम् । तदा राज्ञा मन्त्री वैरोचन आकारितः । तदा मन्त्री वेगेनागतः । राज्ञोक्तम् । हे वैरोचन ! सीमासन्नै राजभिरात्मीयो विषयो विनाशितः श्रृणुमः । तेषां निवारणाय सैन्यं गृहीत्वा याहि। मन्त्र्युवाच। यास्यामि। प्रणम्य निष्क्रान्तो मन्त्री। तदा राज्ञा आकारिता दूती । कुण्डलमेकं तवार्पयिष्यामि । तया सह मम संयोगं कुरु। तयोक्तम् । एवं करिष्यामि । तदा राजा दूती च द्वौ सुन्दरीसदने गतौ। दूतिका द्वारे स्थिता । राजा तत्र मध्ये गतः । तदा सारिकाशुकाभ्यां राजा दृष्टः । शुकेनोक्तम् ।

भूपते नन्दराजेन्द्र ! तवाङ्घ्री प्रणमाम्यहम् ।
वैरोचनः प्रेषितोऽसौ किमर्थं विषयान्तरे ॥ १२ ॥

राजोवाच ।

वासरेषु क्षुधा नास्ति नास्ति निद्रा च रात्रिषु ।
मम कीर! महादुःखं हृदये वसति सुन्दरी ॥ १३ ॥

शुक उवाच ।

स्त्रियो ह्यर्थे हतो वालिः स्त्रियोऽर्थे रावणो हतः ।
परगृहे न गन्तव्यं परदारान् परित्यजेत् ॥ १४ ॥

राजोवाच ।

कीर पण्डित वाचाल ! जनमध्येऽसि वल्लभः ।
परचिन्ता न कर्तव्या परनिन्दां परित्यजेत् ॥ १५ ॥

शुक उवाच ।

राजंस्त्वं शृणु मे वाक्यं शीर्षं नास्ति तवाधिकम् ।
जानकीहरणे चैव दशग्रीवो निपातितः ॥ १६ ॥

राजोवाच ।

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहानुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥ १७ ॥

शुक उवाच ।

न श्रुतं न मया दृष्टं वाटी भक्षति कर्कटीम् ।
तं देशं नैव पश्यामि रक्षको यत्र भक्षकः ॥ १८ ॥
माता यदि विषं दद्यात् पिता विक्रयते सुतम् ।
राजा हरति सर्वस्वं का तत्र परिदेवना ॥ १९ ॥
मा क्रन्द त्वं तु हे सारि ! नन्दो राजा न तस्करः ।
अमृतं तद् विषं जातं यतो रक्षा ततो भयम् ॥ २० ॥
पुत्रगेहे पिता यत् ते आदरं किं न कुर्वसे ।
भृत्यानां पितरं भूपं वदन्ति विबुधा जनाः ॥ २१ ॥
राजा च जनकश्चैव वृद्धभ्राता गुरुस्तथा ।
उपदेष्टा भयत्राता षडेते पितरः स्मृताः ॥ २२ ॥

सुन्दर्युवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ।
मनोरथशतं पूर्णं श्वसुरो गृहमागतः ॥ २३ ॥

राजोवाच ।

अपरीक्षितं न कर्तव्यं धीमतापि कदाचन ।
परजन्मकृतात् पापाद् अहं चैव विमोहितः ॥ २४ ॥
सत्यं कीर ! त्वया ख्यातं मम पुत्रो विरोचनः ।
सुन्दरीयं कुलवधूरेवं मत्वा बहिर्गतः ॥ २५ ॥
यदा बहिर्गतो राजा सुखं सुप्ता च सुन्दरी ।
शुकसार्यौ समालापं कुरुतश्च परस्परम् ॥ २६ ॥
राजा गतो बहिर्यत्र दूती वचनमब्रवीत् ।
सिद्धे कार्ये महाराज ! देहि मे कर्णकुण्डलम् ॥ २७ ॥

अमृतं मधुसंयुक्तं वणिक्पुत्रगृहे पयः।
तत् पित्वा च महाराज ! देहि मे कर्णकुण्डलम् ॥ २८ ॥

राजोवाच।

तृषाक्रान्तो गतः पान्थो नीरं यत्र प्रवर्तते।
सदोषं दृश्यते तत्र न पीतं वारि शीतलम् ॥ २९ ॥

दूतिकोवाच।

जलमध्ये स्थिता गावः पिबन्ति न पिबन्ति वा।
गोपालास्तत्र निर्दोषा हारितं कर्णकुण्डलम् ॥ ३० ॥

राजोवाच।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वचनं दूतिभाषितम्।
शुकवाक्यं मया श्रुत्वा न पीतं वारि शीतलम् ॥ ३१ ॥
राज्ञश्च वचनं श्रुत्वा दूत्या मनसि चिन्तितम्।
हस्ती कर्णे गृहीतो हि न गच्छति कदाचन ॥ ३२ ॥
यत्कार्ये प्रेषितो मन्त्री कार्यं कृत्वा समागतः।
नृपवैरिकुलं जित्वा संप्राप्तो निजमन्दिरम् ॥ ३३ ॥
गृहाङ्गणगतो मन्त्री श्रुत्वा शुकवचस्तदा।
मन्त्री तत्र गतः शीघ्रं पृष्टः कीरो यथायथा ॥ ३४ ॥
कम्पस्वेदाङ्गसंयुक्तो तदा वचनमब्रवीत् ॥

शुकवाक्यम्।

यत् त्वं पृच्छसि मे तात ! यत् पूर्वं वै कथानकम्।
तत सर्वं कथयिष्यामि नन्दराज्ञा च यत्कृतम् ॥ ३५ ॥
एकस्मिन् दिवसे तात ! नन्दो राजा समागतः।
दृष्टो राजा तदाऽस्माभिः कामाकुलितचेतनः ॥ ३६ ॥
द्वारे समागतं दृष्ट्वा सारी चुक्रोध वै भृशम्।
तदा मया च यद् युक्तं तत् तदुक्तं तवाग्रतः ॥ ३७ ॥
तव भार्या च सा साध्वी श्वसुरः कथितो नृपः।
एतद्वाक्यौषधेनैव कामव्याधिर्विदारितः ॥ ३८ ॥
निरामयस्थितो राजा हा दैव ! धिक् कृतं मया।
वैरोचनः सुतोऽस्माकं सुन्दरीयं वधूर्मम ॥ ३९ ॥

एवं मत्वा तदा राजा गतोऽसौ निजमन्दिरम् ।
एवं च पूर्ववृत्तान्तं शुकेनैव निवेदितम् ॥ ४० ॥
सुन्दरी शुकसार्यौ च वैरोचनगृहेषु च ।
क्रीडन्ति विविधेच्छाभिर्वैरोचनप्रसादतः ॥ ४१ ॥
एकस्मिन् दिवसे मन्त्री गतोऽसौ राजमन्दिरम् ।
पूजितस्तत्र नन्देन दुकूलैर्हेमभूषणैः ॥ ४२ ॥
साधु साधु महामात्य ! शत्रवो मम घातिताः ।
वनमाली तदा तत्र प्रोवाच नृपसत्तमम् ॥ ४३ ॥

आरामिक उवाच ।

राजन् ! त्वदीये वास्तव्ये आरामं च विनाशितम् ।
बलिष्ठेन वराहेण कदलीस्तम्भः पातितः ॥ ४४ ॥
गजाश्वरथसेनाभिः राजा मन्त्री च सेवकाः ।
निर्ययुः शूकरार्थं च यत्र वृक्षा निपातिताः ॥ ४५ ॥
शूकरे तैः परिवृते राज्ञोऽग्रे शूकरो गतः ।
राज्ञाश्वः प्रेरितः पृष्ठे राज्ञः पृष्ठे विरोचनः ॥ ४६ ॥
वाराहः प्रेरितो दैवाद् गतो सौगदनं वनम् ।
गता सेना पृथक् राज्ञः पूर्वकर्मविरोधतः ॥ ४७ ॥
गते च शूकरे चैव आगतौ पुष्पवाटिकाम् ।
श्रान्तौ दिशो न जानीतः पूर्वकर्मविमोहितौ ॥ ४८ ॥
मध्याह्ने सति तापस्थे क्षुत्तृषार्दितमानसौ ।
न्यग्रोधे बहुलच्छाये गतौ द्वौ राजमन्त्रिणौ ॥ ४९ ॥
तृषाक्रान्तो महामन्त्रिन् ! उदकं नैव लभ्यते ।
एवं श्रुत्वा ततो मन्त्री वृक्षाग्रे चटितस्तदा ॥ ५० ॥

मन्त्रिवाक्यम् ।

दृश्यन्ते बहवो वृक्षाः पत्रपुष्पफलान्विताः ।
बकसारसनिर्घोषास्तत्र तोयं च विद्यते ॥ ५१ ॥

राजोवाच ।

गच्छ शीघ्रं च भो मंत्रिन् ! उदकं यत्र तिष्ठति ।
एव श्रुत्वा गतो मन्त्री यत्र वृक्षाः सपक्षिणः ॥ ५२ ॥

तत्र दृष्टा महावापी उदकेन प्रपूरिता ।
कं पीत्वा पश्यता वापीं श्लोक एको व्यदृश्यत ॥ ५३ ॥
'तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् ।
अर्धराज्यहरं भृत्यं यो न हन्यात् स हन्यते' ॥ ५४ ॥
श्लोकस्यार्थं विमृश्यैव मन्त्री विस्मयमागतः ।
आगमिष्यति वै राजा तस्मात् पङ्केन लेपितः ॥ ५५ ॥
जलमादाय पात्रेण गतोऽसौ राजसंनिधौ ।
पीत्वा तु शीतमुदकं कुत्र मन्त्रिन् ! हि वापिका ॥ ५६ ॥
तत्र मुक्तस्तदा मन्त्री गतो राजा तु वापिकाम् ।
दृष्टा वापी विचित्रा यल्लिपिः पङ्कविलेपिता ॥ ५७ ॥
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च जले पङ्कमपातयत् ।
राज्ञा च पठितः श्लोकः करुणा हृदि चिन्तिता ॥ ५८ ॥
मद्भयान्मन्त्रिणा एवं श्लोकः पङ्केन लेपितः ।
निश्चयं हृदये कृत्वा मम पुत्रो विरोचनः ॥
एवं मत्वा ततो राजा गतो यत्र विरोचनः ॥ ५९ ॥
शुभ्रं चाम्रफलं मन्त्रिन् ! शुभ्रा वापी सुशीतला ।
न दृष्टो मानवः कोऽपि मया तत्र विरोचन ! ॥ ६० ॥
मद्भीत्या च त्वया श्लोकः कस्मात् पङ्केन लेपितः ।
एवं श्रुत्वा ततो मन्त्री भीतोऽसौ हृदिमध्यतः ॥ ६१ ॥
अस्ति राज्यं नृपसमं गजाश्वरथपत्तयः ।
श्यामास्यं मन्त्रिणं दृष्ट्वा राजा वचनमब्रवीत् ॥ ६२ ॥
तद् राज्यं कीदृशं भ्रातर् ! न ह्यमात्यो नृपैः समः ।
एवमुक्त्वा ततो राजा उत्सङ्गे मन्त्रिणस्तदा ॥ ६३ ॥
प्रसुप्तो दैवयोगेन अतिनिद्राविमोहितः ।
सोऽपि निद्रावशं यातो मन्त्रिणा हृदि चिन्तितम् ॥ ६४ ॥
सुन्दर्य्यर्थेऽभवत् पूर्वं दुष्टबुद्धिः सदा नृपः ।
पुनः श्लोकस्य वाप्यां हि दृष्टोऽर्थश्च दुरात्मना ॥ ६५ ॥
इदानीं न हनिष्यामि पश्चाद् राजा हनिष्यति ।
एवं मत्वा ह्यमात्येन विरोधं पूर्वमुत्तरम् ॥ ६६ ॥

दृढं गृहीत्वा धम्मिल्लं हृतं छुरिकया शिरः ।
चम्पकोपरि स्वस्थेन बहुना पुष्पचायिना ॥ ६७ ॥
दृष्टोऽमात्योऽन्तकस्तादृक् येन राजा निपातितः ।
महाभयवशाद् विप्रो झम्पापातं चकार सः ॥ ६८ ॥
झम्पान्दोलितवृक्षस्य दृष्टा शाखा च मन्त्रिणा ।

तावत् मन्त्रिणा विचारितम् ।

शाखा प्रकम्पिता येन वानरेण नरेण वा ।
अचिरेण त्रिकालेन शाखाभेदे विनश्यति ॥ ६९ ॥

तदा तेन वैरोचनेन उत्थाय सकला वृक्षाः शोधिताः । महाभयात् सकलपुष्प–वाटिकाः संशोधिताः । कोऽपि न दृष्टः । तदा निःश्वासो मुक्तः । पृथिव्यां पतितः । हा हा ! सहसा मया किं कृतम् ।

असंभाव्यं न कर्तव्यं धीमताऽपि कदाचन ।
कदा करोति यो दैवादसौ शीघ्रं विनश्यति ॥ ७० ॥

तदागतो मन्त्री । राजानं निविडवस्त्रेण बन्धयित्वा कूपमध्ये निक्षिप्य उपरि शिला पातिता । राज्ञश्चाश्वः कृत्वा बन्धमोक्षमरण्ये मुक्तः ।

अपराह्णे गते सूर्ये गतो मन्त्री स्वके पुरे ।
राज्यचक्रं पुरो दृष्टं उद्वेगाकुलचेतनम् ॥ ७१ ॥
राजद्वारं गतोऽमात्यः प्रतिहारमपृच्छत ।
राजा चात्र समायातो न दृष्टोऽयं मयाऽधुना ॥ ७२ ॥
ब्रुवन्तं मन्त्रिणं दृष्ट्वा राजलोका उपागताः ।
राज्ञः पुत्रोऽपि तत्रैव पृच्छति स्म पुनः पुनः ॥ ७३ ॥

राजलोका ऊचुः ।

यदा शूकरपृष्ठस्थो राजा त्वं च विनिर्गतः ।
पृष्ठे स्थिता तदा सेना न राजा त्वं च शूकरः ॥ ७४ ॥
न दृश्यते तदा राजा पदमार्गो न लभ्यते ।
मूढा इव स्थिता सेना पृच्छति स्म परस्परम् ॥ ७५ ॥
यादृशी विधवा नारी राहुग्रस्तेन्दुशर्वरी ।
नन्दराज्ञा विहीना च सेना तादृग् विराजते ॥ ७६ ॥

सुभटेनोक्तम् । हा ! दैवेन किं कृतम् । अद्य क्व गमिष्यामि । एवं चिन्तयित्वा केनचिद् आत्मघातः कृतः । सर्वेऽपि आत्मघातं कर्तुमुद्यताः । पश्चाद् विबुधजनैर्बोधिताः, भो भो एतन्न करणीयम् । आत्मघातः कातराणां परन्तु स्त्रीणां विधेयः । न ज्ञायते कुत्र गतः स राजा । परस्परं विमृश्य सेना निवर्तिता ।

वैरोचनेनोक्तम् ।

तदा शूकरपृष्ठस्थो निःसृतश्च मया सह ।
जवीयान् राजतुरगोऽन्तरितोऽहं तदा पथि ॥ ७७ ॥
ततः पश्चान्न जानामि राजा केन पथा गतः ।
शोधितं तद् वनं सर्वं न दृष्टौ नृपशूकरौ ॥ ७८ ॥
विमृष्टं च मया तावत् कदा प्राप्तः पुरं नृपः ।
तस्मादहं समायातो नास्ति नन्दो वने गृहे ॥ ७९ ॥

तावत् तस्मिन्नवसरे राजासनस्याश्व आगतः । तदुपरि राजा नास्ति । एतत् कीदृशम् । कथमश्वेन राजा पातितः । कथं केन गृहीतः । कथं केन हतः । कथं विश्रमिते राज्ञि करादश्वो नष्टः । एवं विचारिते सति सर्वे राजलोका नन्दराज्ञी तस्याः पुत्रो नन्दको मन्त्रिणा समं गाढं रुरोद । हा ! दैवेन किं कृतम् । अतीवाक्रन्दयन्ति । लुण्ठन्ति । कचान् त्रोटयन्ति । हृदयं मुष्टिना ताडयन्ति । एवमुग्रं सकलनगरे विस्वरं जातम् । तदा वैरोचनो मूर्च्छया विमोहितः । तदा तत्र मन्त्री विबुधजनैर्बोधितः । हे वैरोचन! शृणु, सावधानो भव ।

गतं मृतं विनष्टं च नैव शोचन्ति पण्डिताः ।
अयोग्यं रोदनं धीर ! राज्यचिन्तां कुरुष्व च ॥ ८० ॥
धीमद्भिर्बोधितो मन्त्री गतोऽसौ यत्र नन्दकः ।
नन्दकं बोधयित्वा च तदा राज्ञीं प्रबुध्य च ॥ ८१ ॥
त्वं पिता जननी मे त्वं त्वं मे भ्राता सहोदरः ।
नन्दकस्तव पुत्रोऽयं प्रत्यङ्गं च नृपस्य मे ॥ ८२ ॥
एवं पृथक् पृथक् सर्वे राजलोकाः प्रबोधिताः ॥

राज्ञीवाक्यम् । भो भो मन्त्रिन् ! अहमस्मिन् संसारे न तिष्ठामि । अहं सप्तजिह्वं सेवयिष्यामि । मन्त्रिणोक्तं कस्मात् । राज्ञ्या कथितम् ।

विना भर्त्रा च या नारी भुञ्जीत पिबतेऽपि च ।
सा नारी पतिता प्रोक्ता तस्माद् वह्निं च सेवये ॥ ८३ ॥

मन्त्रिणोक्तम् ।

कदा राजा मृतो नास्ति कदा देशान्तरं गतः ।
कदा केन गृहीतो वा किमर्थं वह्निसेवनम् । ॥ ८४ ॥

एवं मन्त्रिणा वैरोचनेन बोधिता सती नन्दा राज्ञी । मनसि सत्यं कल्पितम् । ततः पश्चात् तेन वैरोचनेन सकलराजकुलं समस्तपरिषदो बोधयित्वा राज्ञो नन्दस्य स्थाने प्रवरसिंहासने राज्ञो नन्दकस्य तिलकं कृत्वा समस्तराजकुलसहितेन तेन प्रणामः कृतः। एवं कृत्वा गतो मन्त्री निजावासे । नन्दको राजा अतिरुचिरां राज्यश्रियं करोति। तस्य राज्ञो बुद्धिदाता वैरोचनः ।

एकस्मिन् दिवसे रात्रौ राजा विनिःसृतो बहिः ।
रूपप्रावरणं कृत्वा शृणोति च शुभाशुभम् ॥ ८५ ॥
एकाकी सकले मार्गे अतिप्रच्छन्नचेष्टया ।
भ्रमंस्तु नन्दको राजा पुरद्वारे कदाचन ॥ ८६ ॥

मुहूर्तमेकं राजा तत्रोपविष्टः। तावन्नगराद् बहिः कस्यापि वाक्यं श्रुतम् । एकाग्रमनसा श्रुतं तदा । बाह्यपुरुषेण पुनरुक्तम् ।

माता नास्ति पिता नास्ति नास्ति भ्राता कुटुम्बकः ।
एकाकिनी च मे भार्या कथं रात्रिं नयिष्यति ॥ ८७ ॥

पुनरुक्तम् ।

पद्मपत्रविशालाक्षी नगरे वसति कामिनी ।
सा मे दहति गात्राणि शाखा वैरोचनं यथा ॥ ८८ ॥

इति श्रुत्वा तदा राजा वेगेनोत्थितः । राजोवाच। त्वं कः ।

भूतः प्रेतः पिशाचो वा रक्षो यक्षोऽथ किन्नरः ।
पान्थो वा तस्करो वाऽथ किमर्थं चात्र तिष्ठसि ॥ ८९ ॥

बाह्यपुरुषेणोक्तम् ।

नाहं भूतः पिशाचो वा रक्षो यक्षोऽथ किन्नरः ।
तस्करः पथिको नाहं बटुको नन्दकस्य च ॥ ९० ॥
नन्दार्थं सुरपूजार्थं पुष्पार्थं च वनं गतः ।
पुष्पं गृह्य यदायातो दत्तं द्वारेषु तालुकम् ॥ ९१ ॥
उक्तानि बहुवाक्यानि द्वारपालस्य चाग्रतः ।
तथाप्यनेन नो मुक्तस्तस्मादत्रापि संस्थितः ॥ ९२ ॥

एवं श्रुत्वा ततो राज्ञा शीघ्रं भग्नं च तालुकम् ।
मध्येऽसौ बटुको नीतः स्वे स्वे स्थाने च तौ गतौ ॥ ९३ ॥
प्रभाते द्वारपालेन भग्नं दृष्टं च तालुकम् ।
बुम्बारवं तदा चक्रे चौरैर्भग्नं च तालुकम् ॥ ९४ ॥

तदा सर्वे रक्षपालास्तत्रागताः । भो भो द्वारपाल ! कथं कथम् । तेनोक्तं रात्रौ तालुकं चोरैर्भग्नम् । अतः कारणात् मया बुम्बारवः कृतः । रक्षपालेनोक्तम् । भो भोः पदपरीक्षक ! पदं विलोकय । तेन विलोक्योक्तं च । अस्माद् द्वारात् कोऽपि बहिर्न निःसरितः । द्वौ पुरुषौ समागतौ । एकः पुरुषोऽस्मिन् मार्गे गतः । द्वितीयोऽन्यस्मिन् मार्गे गतः । यस्मिन् मार्गे बटुको गतस्तस्मिन् मार्गे पदेपदेन बटुकस्य गृहं गत्वा बटुकं बद्ध्वा राजद्वारे गताः । विज्ञापितो राजा । अनेन बटुकेन रात्रौ तालुकं भङ्क्त्वा गृहे गमनं विहितम् । अन्यायेन तेनास्माभिर्बद्धः । अत्रानीतः । राजोवाच । केन कथितं बटुकेन तालुकं भग्नम् । तैरुक्तं पदपरीक्षकैः कथितम् । राजोवाच । पदपरीक्षकस्य वस्त्रादिकं देयम् । अहो रक्षपाला बटुकं मम हस्ते दत्त्वा स्वं स्वं स्थानं गच्छन्तु । द्वारपालस्य शिक्षा प्रदेया दण्डश्च । कथमेवंविधोऽचेतनो रात्रौ । ततो राज्ञा बटुकस्य बन्धमोक्षः कृतः । प्रशंसितः । अन्तःपुरमध्ये नीतः । बटुकस्य गृहे वर्द्धापनिकः प्रेषितः । पश्चादेकान्ते स्थित्वा बटुकसमीपे प्रश्नः कृतः । हे बटुक ! भयं मा गाः ।

छन्दोलक्षणसंपूर्णं नानाविद्याविभूषितम् ।
सत्यं कथय मे भ्रातर् पुरद्वारस्य भाषितम् ॥ ९५ ॥

बटुकेनोक्तं न किञ्चिदपि । राजोवाच । कस्य भयात् त्वं न कथयसि । बटुकेनोक्तं राज्ञोऽग्रे भयं कुतः । रात्रौ पुरद्वारे मया किं भाषितम् । राजोवाच । त्वया पठितं 'पद्मपत्रे'ति । श्लोकस्यार्थो मया सर्वो ज्ञातः । यद् एवंविधा कामिनी त्वदीयचित्ते दहति तत् सत्यम् । परन्तु 'शाखा वैरोचनं यथा' तत् किम् । बटुकेनोक्तम् । अहं तन्न कथयिष्यामि । राजोवाच । कस्मात् । बटुकेनोक्तम् । वैरोचनभयात् । राजोवाच । ममाग्रे वैरोचनः कः । ततः पश्चात् बटुकेन सर्वं पूर्ववृत्तान्तं कथितम् । हे स्वामिन् ! वैरोचनेन तव पितुः शिरश्छित्त्वा पुष्पवाटिकायां कूपमध्ये प्रक्षिप्तः । उपरि शिलैका दत्ता । तदाहं चम्पकोपरि संस्थितः । ततः पश्चाद् वैरोचनभयेन झम्पापातः कृतः । तदा शाखा प्रकम्पिता । तस्मिन्नवसरे वैरोचनेन शाखां प्रकम्पितां दृष्ट्वा चिन्तितम् । हा दैव ! कस्मात् शाखा प्रकम्पिता । येन केन कालेनाहं एतच्छाखाभेदेन विनश्यामि । पश्चादहं नष्टः । तेन कारणेन वैरोचनस्य शाखा दहति । राज्ञो बटुकस्य द्वयोरालापं कुर्वतो

दिवसस्य प्रथमप्रहरार्धं गतम् । तदा नान्दकिना राज्ञा वैरोचन आकारितः । उक्तं च हे वैरोचन ! क्रीडार्थमद्य पुष्पवाटिकायां गच्छामः । त्वयापि मया सह आगन्तव्यम् । वैरौचनेनोक्तम् । आगमिष्यामि । ततः पश्चाद् राजा वैरोचनश्च सज्जीभूत्वा स्वस्वसेनासहितौ नगराद् बहिरेकत्र मिलित्वा पुष्पवाटिकां प्रति निःसृतौ । तदा नान्दकेन राज्ञा सर्वापि सेना विलोकिता । ततः पश्चाच्चिन्तितम् ।

यादृशी मम सेना च सेना तादृग् विरोचनी ।
गजाश्वरथतुल्यो मे भयतुल्यो भयंकरः ॥ ९६ ॥

एवं चिन्तयित्वा ततः पश्चाद् राजा तत्र स्थितो निवर्तितः । सर्वे पुरवासिनः सेवकाः स्वं स्वं स्थानं गताः । राजा गतो निजावासे । वैरोचनोऽपि गृहं गतः । सुन्दर्युवाच वैरोचनं प्रति । हे नाथ ! न ज्ञायते किं भविष्यति ।

गृहगोधातिकृष्णा च पतिता मम मस्तके ।
उलूकश्चाधुना दृष्टः सदनोपरि संस्थितः ॥ ९७ ॥

एवं सुन्दर्या वैरोचनस्याग्रे निवेदितम् । तदा नान्दकिना वैरोचनस्याकारणार्थं दूत एकः प्रेषितः समायातः । तेनोक्तम् । भो वैरोचन! राजा नन्दकिस्तवाकारयति । वैरोचनेनोक्तं कस्मात् । तदा द्वितीयो दूतः समायातः । तेनाप्येवमुक्तम् । पुनर्वैरोचनेनोक्तम् । ईदृशं किं कार्यं यदा एवं चिन्तयति । तदा तृतीयो दूतः समायातः । तृतीयेनाप्येवं कथितम् । तदा वैरोचनेन सुन्दरीं प्रत्युक्तम् । हे सुन्दरि ! शृणु सावधाना । न ज्ञायते केन कारणेन राज्ञा शीघ्रं शीघ्रमाकारणं मुक्तमस्ति । मयापि पूर्वं राजा चिन्ताप्रपन्नो दृष्टः । यदा पुष्पवाटिकायां क्रीडार्थं निःसरता राज्ञा अर्धमार्गं गतवता सर्वं सैन्यं विलोकितं तदा मया चिन्ताप्रपन्नो दृष्टः । परन्तु हे सुन्दरि ! अस्मदीये मनसि सुखदुःखविभोगिनी भार्या त्वम् । वयं तवाग्रे एकं गोप्यं कथयिष्यामः । कदाचित् तेन कारणेन राजा पुनः पुनरप्याकारयति । सुन्दर्युवाच । तत् किं गुह्यम् ।

वैरोचन उवाच ।

पूर्वमभ्यागतो राजा त्वदर्थे चैव सुन्दरी ।
तेन पूर्वविरोधेन मया नन्दो निपातितः ॥ ९८ ॥
परन्तु वाप्यां श्लोकार्थे मया राजा निपातितः ।
नरेण वानरेणापि तदा शाखा प्रकम्पिता ॥ ९९ ॥
तेन शाखाप्रभावेण नृपेणाकारितो ह्यहम् ।
एतद् गुह्यं च मे भार्ये ! तवाग्रे विनिवेदितम् ॥ १०० ॥

सुन्दर्युवाच ।

हे नाथ ! यद्येवमस्ति तर्हि मदीयं वाक्यं शृणु ।
त्वदीयोपार्जितं द्रव्यं दत्तं भुक्तं त्वया न च ।
न भोक्ष्यन्ति सुतास्ते च सर्वं नेष्यति नान्दकिः ॥ १०१ ॥

उक्तं च ।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ १०२ ॥
विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं शुभाशुभे ॥ १०३ ॥

एवं श्रुत्वा वैरोचनेनोक्तम् । सत्यं साधु सुन्दरि ! तदा वैरोचनेन यत्किञ्चिद् द्रव्यं यानि कानि वस्तूनि गजाश्वरथकाञ्चनानि सर्वं विप्रेभ्यो दत्तम् । तदा सर्वैः पुत्रैरुक्तम् । हे तात ! सर्वस्वं कस्माद् विप्राणां दत्तम् । तदा वैरोचनेन सर्वं वृत्तान्तं पुत्राणामग्रे कथितम् । तदा पुत्रैरङ्गीकृतं तद् । भवद्भिरुचितं कृतम् । तदा वैरोचनेनोक्तं पुत्राणामग्रे । कदा तत्र गतादनु राजा एतस्य कारणस्य प्रश्नं करिष्यति । तदाहं सत्यं कथयिष्यामि । तदनु त्रयाणां पुत्राणां मध्यादेकः कोऽपीदृशो भविष्यत्यः खड्गेन मदीयं शिरश्छिनत्ति । तदनु भवदीयं राज्यम् । एवं पितुर्वाक्यं श्रुत्वा वृद्धपुत्रेणोक्तम् ।

पिता वै सर्वतीर्थाणि पिता देवो जनार्दनः ।
पितृभक्तिः सदा पुंसां तीर्थदेवार्चनाधिका ॥ १०४ ॥

तस्मान्न हनिष्यामि । तर्हि त्वं याहि । तदा वैरोचनस्य प्रणामं कृत्वा वृद्धपुत्रो निष्क्रान्तः । द्वितीयेनोक्तम् ।

तेन राज्येन किं कार्यं पिता यत्र च हन्यते ।
वैरभावं करिष्यामि त्वां हि यो घातयिष्यति ॥ १०५ ॥

त्वं हि याहि । प्रणामं कृत्वा सोऽपि निष्क्रान्तः । लघुपुत्रेणोक्तम् । हे तात ! तस्मिन्नवसरे तव वाक्यादहं खड्गेन तव शिरश्छेदयिष्यामि । तदनु यत्किञ्चिद् भवति तद् भवतु । वैरोचनेनोक्तम् । साधु पुत्र ! त्वम् । हे भार्ये सुन्दरि ! त्वया पुत्रस्यास्य गर्भसमये को दृष्टः । तयोक्तम् । स्वामिन् ! प्रहरकश्चाण्डालो दृष्टः । एतत् त्सत्यम् । तदा वैरोचनो मन्त्री भार्यायाः सुन्दर्याः शिक्षापनां दत्वा त्रिभिर्दूतैः सह लघुपुत्रेण समं राज्ञः सकाशं गतः । तदा वैरोचनेन साक्षात् कालसदृशो दृष्टः । तदा राज्ञोक्तम् ।

रे वैरोचन ! दुरात्मन् ! पापिष्ठ ! विश्वासघातक ! चाण्डाल ! राजा त्वया कुत्र मुक्तः । मन्त्रिणा विमृष्टम् ।

तावद् भयाच्च भेतव्यं यावद् भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशङ्कितैः ॥ १०६ ॥

वैरोचनेनोक्तम् । राजन् ! यावदमात्यस्य हृदये राजा दुःसहो भवति तावद् येन केनाप्युपायेन राजा मरणं याति । अमात्येन तदुपायः करणीयः । अतः कारणाद् राजा निपातितः । पुष्पवाटिकायां कूपमध्ये प्रक्षिप्तः । तदा वृक्षस्य शाखा प्रकम्पिता । तस्य शाखाभेदोऽयम् । तदा वैरोचनपुत्रेणोक्तम् । रे दुरात्मन् वैरोचन ! राजा नन्दस्त्वया निपातितः । तदा तेनोक्तं मया निपातितः । तदा वैरोचनस्य पुत्रेण खड्गं गृहीत्वा वैरोचनस्य शिरश्छिन्नं भूमौ पातितं च । तदनु तेन पुत्रेण पितुश्छिरः पादप्रहारेणाहतम् । एवंविधे वर्तमाने राज्ञा केऽपि सुभटा वैरोचनस्य गृहे धनहरणार्थं प्रेषिताः । तानागतान् दृष्ट्वा सुन्दर्या गृहमध्ये प्रविश्य द्वारे वह्निर्मुक्तः । सा प्रज्वलिता । तैरागत्य राजा विज्ञापितः । महाराज ! वैरोचनगृहे हेमवस्त्रादिकमपि नास्ति । सर्वं विप्राणां पूर्वदत्तम् । सुन्दर्यपि प्रज्वलिता गृहमध्ये । तदा एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा तेन पुत्रेण मरणार्थं स्वकीये कण्ठे तदेवं खड्गमारोपितम् । तदा वेगेन राजा समुत्थितः । तस्य हस्तात् खड्गं गृहीत्वा तं प्रति उवाच । हे मन्त्रिपुत्र ! त्वं साधु मे राज्यधर्मः कृतः । पितुः करुणा न चिन्तिता । पश्चात् तेन राज्ञो वचनादात्मीयं शिरो न च्छिन्नम् । तदा तेन राज्ञा मन्त्रिपुत्रस्य मुद्राऽर्पिता । वैरोचनस्तीर्थे प्रेषितः । पश्चाद् राजा सुखी संजातः । वैरोचनस्य पुत्रो राज्ञो नान्दकेः प्रसादेन राज्ये सर्वमुद्रां करोति । तदनु राजा नान्दकिरिन्द्रतुल्यं राज्यं कुरुते ।

इति नन्दोपाख्यानं समाप्ति पफाण । संवत् १७३१ वर्षे भाद्रवमासे शुक्लत्रयोदश्यां देवेन लिपिकृतम् ।

परिशिष्ट

'नन्दबत्रीसी' के भ्रष्ट संस्कृत श्लोक

॥ ६° ॥ ए नमः ॥ अथ नन्दबत्रीसी ॥

पटाम्बरं महादिव्यं भ्रमरा यत्र तिष्ठति ।
कस्य पुरुषस्य भवेन्नारी कथयस्व रजकां पुतः ॥ १ ॥

रजक उवाच ।

वैरोचनो नाम पुरुषेण तव मन्त्रेण भूयते ।
कमला तस्य पत्नी वराङ्गनारूपमोहितः ॥ २ ॥

द्वारपाल उवाच ।

द्वारे तिष्ठति भूपालो द्वारपालो न मुञ्चति ।
दीनं वदति कामान्धो हारितं रत्नकुण्डलम् ॥ ३ ॥

शुक उवाच ।

भूपते नन्दराजेन्द्र ! तव पादौ प्रणतोऽस्म्यहम् ।
वैरोचने गते कार्यं किमर्थं पुत्रमन्दिरे ॥ ४ ॥

राजोवाच ।

वासरे च क्षुधा नास्ति निशि निद्रा न विद्यते ।
मम कीर ! महादुःखं हृदये वसति कामिनी ॥ ५ ॥

शुक उवाच ।

स्त्रियोऽर्थे हतो वाली रामेन रावणो हतः ।
परगृहे न गन्तव्यं परनिन्दां परित्यजेत् ॥ ६ ॥

राजोवाच ।

कीर ! पंडित ! चार्वाक ! जनमध्येऽसि वल्लभः ।
परचिन्ता न कर्तव्या परनिन्दां परित्यजेत् ॥ ७ ॥

शुक उवाच ।

नैव पश्यति कामान्धो जन्मान्धो नैव पश्यति ।
नैव पश्यति मदोन्मत्तः, अर्थी दोषं न पश्यति ॥ ८ ॥

नार्युवाच ।

राजन् ! कोपं प्रशमय तवायत्तं हि मे वपुः ।
रक्ष रक्ष मम पुत्रं कीर ! त्वं राजपक्षिणम् ॥ ९ ॥

कीर उवाच ।

अपूर्वोऽयं मया दृष्टो वाटी भक्षति कर्कटीम् ।
तत्र देशे न वास्तव्यं रक्षको यत्र भक्षकः ॥ १० ॥

राजोवाच ।

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहाऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥ ११ ॥

शुक उवाच ।

माता यदि विषं दद्यात् पिता विक्रयते सुतम् ।
राजा हरति सर्वस्वं का तत्र परिदेवना ॥ १२ ॥

नार्युवाच ।

त्वं किं क्रन्दसि मार्जार ! राजा नन्दो न तस्करः ।
अमृताद् विषमुत्पन्नं यतो रक्षास्ततो भयम् ॥ १३ ॥

शुक उवाच ।

पुत्रगृहे गतो राजा नादरं किं करिष्यसि ।
मा क्रन्दसि मार्जारि ! नन्दकुलवधूर्यथा ॥ १४ ॥

राजोवाच ।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं च कीरभाषितम् ।
मम कुलवधूः पुत्री मम पुत्रो विरोचनः ॥ १६ ॥
अमृतं मधुसंयुक्तं वाणिपुत्र ! तव गृहे ।
न पीतं राजपुत्रेण देहि मे रत्नकुण्डलम् ॥ १६ ॥

प्रतिहार उवाच ।

जलमध्ये स्थिता गावः पिबन्ति न पिबन्ति च ।
गोपालास्तत्र निर्दोषा हारितं रत्नकुण्डलम् ॥ १७ ॥

कीर उवाच ।

तृषाक्रान्तो गतो हस्ती पानीयं पातुमिच्छया ।
दृष्ट्वा सिंहपदं तत्र न पीतं वारि शीतलम् ॥ १८ ॥

राजोवाच ।

सत्यं सिंहपदं तत्र पानीयं पातुमुद्यतः ।
श्रूयते शुकवाक्येन न पीतं वारि शीतलम् ॥ १९ ॥

दूत उवाच ।

उत्पन्नकथितं श्रुत्वा कदलीवनं निपातितम् ।
असम्भाव्यं च वाराहः आरामे च वने गतः ॥ २० ॥

प्रधान उवाच ।

दृश्यन्ति बहुला वृक्षाः पुष्पपत्रसमन्विताः ।
काककोइलशब्दोऽस्ति तत्र तोयं भविष्यति ॥ २१ ॥
तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् ।
अर्धराज्यहरं भृत्यं यो न हन्यात् स हन्यते ॥ २२ ॥
आरण्ये निर्जले देशे वापी तिष्ठति पूर्णताम् ।
पानीयस्य विकारेण किं तस्य चलितं मनः ॥ २३ ॥
शाखा प्रकम्पिता येन वानरेण नरेण वा ।
अचिरेणैव कालेन शाखाभेदे विनश्यति ॥ २४ ॥
कमलदलसुनेत्रं हारविस्तीर्णतोयं स्तनतटकृतहंसं रोमराजीतरङ्गम् ।
मदनगतसुरेन्द्रैः शारदापद्मखण्डं सुरपतिरिति सेव्यं कस्य भोः स्त्रीतटाकम् ॥ २५ ॥
प्रयागवटशाखाभिश्चूर्णितं येन गात्रं रणमुखगजदन्ते येन भिन्नं शरीरम् ।
बहुकुसुमसुगन्धैः पूज्यते येन शम्भुः सुरपतिरिति सेव्यस्तस्य भोः स्त्रीतटाकः ॥ २६ ॥

मालिन्युवाच ।

किं मां पृच्छसि भर्त्तार ! मातृसुतस्तथा पुनः ।
न सुखं च तथा दृष्टं किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥ २७ ॥
छन्दोलक्षणसम्पूर्णा सुभाषितविभूषिता ।
वनान्ते कथिता वार्ता अहं चैव वनं गता ॥ २८ ॥
मा पुनः पृच्छसि कान्ते शर्वरीप्रहरद्वयम् ।
अपृच्छामेव वक्तव्यं मरणाय ध्रुवं भवेत् ॥ २९ ॥
प्रधानो राजपुत्रेण उभयौ द्वौ तुरङ्गमौ ।
वैरोचनेनाहतो नन्दो मया शाखा प्रकम्पिता ॥ ३० ॥
पद्मपत्रविशालाक्षी हृदये वसति कामिनी ।
सा मे दहति गात्राणि शाखा वैरोचनं यथा ॥ ३१ ॥
वैरं वर्षसहस्राणि वैरोचनस्य जायते ।
उदरे च स्थितो राजा तेन कुक्षिः प्रवीक्ष्यते ॥ ३२ ॥

इति श्रीनंदबत्रीसी समाप्ता ॥ लखितं पं. तत्त्वविजयगणिना ॥

सहस्रऋषिकृता नन्दनृपकथा ।

॥ ॐ श्रीवीतरागाय नमः ॥

आद्यां शक्तिं प्रणम्यादौ देवीं सुमतिदायिनीम् ।
शिरसा सद्गुरुं नत्वा वक्ष्ये नन्दकथानकम् ॥ १ ॥
श्रीपाटलपुरं नाम नागरैः परिशोभितम् ।
तत्रास्ते नृपतिर्नन्दो न्यायधर्मसमन्वितः ॥ २ ॥
एकदा मृगयार्थं हि गतो राजा महावने ।
मृगस्य पृष्ठितो धावन् तृषाक्रान्तो गतः सरे ॥ ३ ॥
शीतलतोयसम्पूर्णे पद्मिनीखण्डमण्डिते ।
स्नात्वा पीत्वा जलं हृष्टः कौतुकं तत्र दृष्टवान् ॥ ४ ॥
सरस्यादूरसामन्ते यावद्राजा विलोकते ।
तावदलिकुलं दृष्टं गुंजन्तं दूर्वमण्डले ॥ ५ ॥
तं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप्य चिन्तयामास मानसे ।
किमिदमद्भुतं दिव्यं रजकं तत्र पृच्छति ॥ ६ ॥

राजोवाच ।

चन्दनं नैव पद्मं च केतकी नैव दृश्यते ।
दूर्वायामलिवृन्दं यद् उच्यतां कारणं हि भोः ॥ ७ ॥

रजक उवाच ।

मन्त्रिणो तव राजेन्द्र ! पद्मगन्धा हि या प्रिया ।
तस्या वै वस्त्रगन्धेन दूर्वायां षट्पदै रवम् ॥ ८ ॥
रजकस्य वचः श्रुत्वा विस्मयंगतमानसः ।
तस्या विलोकने जाता उत्कण्ठा हि गरीयसी ॥ ९ ॥
गृहमागत्य राजा वै उपायान्नविलोकयत् ।
मन्त्रिणं प्रेक्ष्य(ष्य) कुत्रापि रात्रौ तत्र व्रजाम्यहम् ॥ १० ।
एवमाहूय तं राजा प्रेषयामास कुत्रचित् ।
कामेन प्रेरितः शीघ्रं तत्रैव गतवान् नृपः ॥ ११ ॥
द्वारमागतभूपालो द्वारपालेन वारितः ।
तावत् कामातुरो भूत्वा दत्तवान् रत्नकुण्डलौ ॥ १२ ॥

एवं कृत्वा गतो राजा मन्दिरे स्वर्गसन्निभे।
राजानमागतं दृष्ट्वा कीरो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

कीर उवाच।

एकाकी आगतो भूप रात्रावत्र किंकारण (णम्): ।
वैरोचने गते ग्रामे किमर्थं पुत्रमन्दिरे ॥ १४ ॥

राजोवाच।

कारणेनागतोऽस्मीति महता प्राणहारिणा ।
विना कारणं कीरेश! कोऽपि याति परगृहे ॥ १५ ॥

कीर उवाच।

वदस्व नन्द! भूमीश! कारणं वै समागतः ।
येन त्वमागतो रात्रावेकाकी परवेश्मनि ॥ १६ ॥

राजोवाच।

कारणं श्रूयतां कीर! महदाश्चर्यकारणम् ।
पद्मिनीश्रुतिमात्रेण कामेनाहं वशीकृतः ॥ १७ ॥
वासरे च क्षुधा नास्ति रात्रौ निद्रा निवर्तिता।
मम कीर! महादुःखं हृदये(हृदि) वसति सुन्दरी ॥ १८ ॥

कीर उवाच।

रावणाद्या महीपा ये परदाररता नृप! ।
महाबला महायोधाः पश्य केन क्षयं गताः ॥ १९ ॥

राजोवाच।

कीरेश! तव वाक्यानि माननीयानि पण्डितैः ।
त्वमेव किं न जानासि दुर्द्धरो मकरध्वजः ॥ २० ॥

कीर उवाच।

एवमेव प्रमाणं हि तव वाक्यं नराधिप! ।
तथापि शृणु मे वाक्यं यथोक्तं शास्त्रकोविदैः ॥ २१ ॥
न चन्द्रादग्निः कुत्रापि न सूर्यात् तिमिरं क्वचित्।
न चामृतात् क्वचिन्मृत्युर्न भयं धर्मतः क्वचित् ॥ २२ ॥

राजोवाच।

खगश्रेष्ठोऽसि प्राज्ञोऽसि गुणयुक्तोऽस्यनेकधा।
परपीडां न जानासि निष्फलास्तेऽखिला गुणाः ॥ २३ ॥

कीर उवाच।

न च पश्यति जन्मान्धो कामान्धोऽपि न पश्यति।
न पश्यति मदोन्मत्तो अर्थी दोषं न पश्यति ॥ २४ ॥

राजोवाच।

पक्षपुष्टिं कथं वाक्यं परुषं मे ब्रवीषि भोः।
कथं बिभेषि नो मृत्योर्नेच्छसे जीवितं हि किम्? ॥ २५ ॥
अहं राजा प्रजामध्ये तव जातिर्विहङ्गमः (मा)।
त्वत्तो मे मरणं नास्ति मत्तो ते मरणं ध्रुवम् ॥ २६ ॥

कीर उवाच।

चेत् त्वं राजाऽसि किं जातं अहमस्मि जन(नः?) प्रभो!।
मारणे अ(त्व)यशः लोके परत्र चाधमा गतिः ॥ २७ ॥
श्रुत्वा क्रोधान्धभूत्वा वै यावद् धावति मारणे।
राजानं कुपितं ज्ञात्वा नारी वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

नारी उवाच।

राज्ञः कोपस्य शान्त्यर्थं पद्मिनी पद्मलोचना।
दास्यस्मि तव राजेन्द्र! रक्ष मे कीरपक्षिणम् ॥ २९ ॥
निषीद कोमले शयने एवमुक्तं तदा तया।
हावभावकटाक्षैश्च राजा मनसि तोषितः ॥ ३० ॥
तत्रैकः पालितश्चौतुस्तिष्ठते मन्त्रिणो गृहे।
राजानं पश्य नारीं च स्नेहाकुलपरस्परम् ॥ ३१ ॥

मार्जार उवाच।

कोऽसि त्वं चौर! इत्युक्त्वा मार्जारी घुर्घुरायत्।
बहिर्निर्गच्छ रे मूढ! नो चेत्! मृत्युरिहास्ति ते ॥ ३२ ॥

राजोवाच।

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः।
उद्ग्रहो निग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

नारी उवाच।

मा त्वमाक्रन्द मार्जार! नन्दराजा न तस्करः।
आदरं कुरु यत्नेन दुर्लभं राजदर्शनम् ॥ ३४ ॥

मार्जार उवाच।

अपूर्वं च मया दृष्टं वाटी भक्षति कर्कटीः ।
तत्र देशे न वस्तव्यं रक्षको यत्र भक्षकः ॥ ३५ ॥

कीर उवाच ।

माता यदि विषं दद्यात् पिता विक्रयते सुतम् ।
राजा हरति सर्वस्वं शरणं किं नखिन्! वद ॥ ३६ ॥

मार्जार उवाच ।

सागरो मुक्तमर्यादश्चलितो मन्दरो गिरिः ।
धरणी कम्पमाना च रक्षितुं कः क्षमः शुक! ॥ ३७ ॥

कीर उवाच ।

गृहे प्राप्ते च वै राज्ञि युज्यते मित्र! आदरः ।
अमृतं विषसंयुक्तं यत्र क्रीडा वधूसमम् ॥ ३८ ॥

राजोवाच ।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं च तव भाषितम् ।
सुन्दरी मम वधूः कीर! पुत्रो वैरोचनो हि मे ॥ ३९ ॥
चलितो स्वगृहे राजा द्वारपालं ब्रवीति च ।
न पीतं तन्मया वारि देहि मे रत्नकुण्डलौ ॥ ४० ॥

द्वारपाल उवाच ।

जलमध्ये स्थिता गावो पिबन्ति न पिबन्ति वा ।
गोपालस्तत्र निर्दोषो हारितौ रत्नकुण्डलौ ॥ ४१ ॥
एवं निरुत्तरीभूत्वा गतो राजा स्ववेश्मनि ।
ततो व्याघुट्य मन्त्री च सम्प्राप्तो नृपसन्निधौ ॥ ४२ ॥
नृपोऽपि मानपूर्वं तं विससर्ज गृहं प्रति ।
मन्त्रिणाऽपि गृहं प्राप्य श्रुतं सम्बन्धं(वृत्तं च) रात्रिजम् ॥ ४३ ॥
ग्लानियुक्तोऽपि मन्त्री वै राजानं सेवते भृशम् ।
तृणैरावेष्टितो वह्निर्दुर्द्धरो गोपने हि सः ॥ ४४ ॥
एकदागत्य केनापि वृत्तान्तं वनचारिणाम् ।
कथितं भूरिभूतानां मृगाणां वैरिणाऽति वै ॥ ४५ ॥
श्रुत्वा हृष्टो नृपो यस्माद् भूपानां मृगया प्रिया ।
गतो तत्रैव शीघ्रं हि पीडयन् जीवं निर्घृणम् ॥ ४६ ॥

कोऽपि चित्रमयः प्राणी दृष्ट्वा राजा विमोहितः ।
तस्यानु प्रेरयन्नश्वं गतो दूरं समन्त्रिणः(कः) ॥ ४७ ॥
दृष्टितोऽगोचरं ज्ञात्वा तं मृगं नृपनन्दनः ।
तृपयाऽऽक्रान्तितश्चाथ तोयं कुत्रापि मन्त्रवित् ! ॥ ४८ ॥
दूरतो दृष्टवान् मंत्री भूरुहाणां वनं घनम् ।
द्वि [1]जैर्नानाविधैः पूर्णं लतागुल्मादिशोभितम् ॥ ४९ ॥
तत्रैका वापिका रम्या विशाला चित्तहारिणी ।
निर्मला तोयसम्पूर्णा तिष्ठत्यतिसनातना ॥ ५० ॥
अश्वादुत्तीर्य राजा वै प्रविवेश तृपार्तितः ।
पीत्वा तच्छीतलं तोयं यावत् तिष्ठति तत्र सः ॥ ५१ ॥
तावद्विलोकयामास वृत्तं भित्तौ विलेखितम् ।
तद् वाच्य चिन्तयामास मंत्री वाच्य विलक्षति ॥ ५२ ॥
एवं सञ्चिन्त्य राजा वै गृहीत्वा आर्द्रमृत्तिकाम् ।
लेपयित्वा च तं वृत्तं एवं कृत्वा बहिर्ययौ ॥ ५३ ॥
ततो मन्त्री गतो वाप्यां पीत्वा तोयं च शीतलम् ।
लिप्तमाधुनिकं दृष्ट्वा यावत् तं धौति विस्मयः(यात्) ॥ ५४ ॥
तावत् तन्निर्गतं वृत्तं मन्त्री मन्त्रसमन्वितः ।
तं वाच्य विमनो जातो वक्ष्यमाणमिदं हि तत् ॥ ५५ ॥
तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं वि(व्य ?)वसायिनम् ।
मन्त्रिणं [2]अर्धभागं च यो न हन्यात् स हन्यते ॥ ५६ ॥
एवं ससल्ल(शल्य) मंत्री च राजानं मारणोत्सुकः ।
आगत्य उक्तवान् भूपं ज्ञेत(गन्त)व्यं सघने तरौ ॥ ५७ ॥
ततः श्रमाकुलो भूपः सुप्तो वै मन्त्रिणोदितः ।
कपटेनैव मंत्री च मर्प(र्द)ते पादं तत्र वै ॥ ५८ ॥
तस्मिन्नेव तरोरूर्ध्वं केनाप्यागत्य हेतुना ।
पूर्वमारुहितो माली ताभ्यां मा लोक्य शङ्कितः ॥ ५९ ॥
प्रच्छन्नीभूय तत्रस्थो यावन्माली विलोकते ।
तावद्वै मन्त्रिणा राजा हतः खड्गेन पापिना ॥ ६० ॥

---

१ " मचकुन्दपुष्पैः " टिप्पणी । २ " अधभागिनम् " टिप्पणी ।

एतदनुचितं कार्यं दृष्ट्वा माली प्रकम्पितः।
तस्यैव कम्पने शाखा सर्वतः सा प्रकम्पिता ॥ ६१ ॥
शाखाप्रकम्पनं ज्ञात्वा मन्त्री मनसि शङ्कितः।
हा हा किं चालिता ह्येषा वानरेण नरेण वा ? ॥ ६२ ॥
भीतो मंत्री वदत्येवं शाखाभेदेन मे ध्रुवम्।
मृत्युर्भावी न सन्देहस्ततः शीघ्रं पलायितः ॥ ६३ ॥
आगत्य मन्त्रिणा प्रोक्तं हतः केनापि भूपतिः।
सुनन्दः स्थापितो राज्ये शोकान्ते भूपनन्दनः ॥ ६४ ॥
अन्यदा नष्टचर्यायां रात्रौ भ्रमति भूभुजः।
तस्मिन्नेव विभावर्यां मालाकारो गृहागतः ॥ ६५ ॥
दम्पतीनां च आलापं प्रेमयुक्तं परस्परम्।
शृणोति तत्र राजापि कौतुकाकृष्टमानसः ॥ ६६ ॥

मालनी उवाच।

यथा स्मरति गौर्वत्सं चक्रवाकी दिवाकरम्।
सती स्मरति भर्तारं य(त)थाऽहं तव दर्शनम् ॥ ६७ ॥

माली उवाच।

पद्मपत्रविशालाक्षि! पूर्णचन्द्रनिभानने!।
दहन्ती तिष्ठति मां च शाखा वैरोचनं यथा ॥ ६८ ॥

मालनी उवाच।

कथं वैरोचनं शाखा चित्तं दहति ब्रूहि मे।
यथा जानाम्यहं कान्त! कीदृशी तव वल्लभा ॥ ६९ ॥

माली उवाच।

एतन्मा पृच्छ हे कान्ते! रात्रौ वक्तुं न युज्यते।
कुर्वतोरीदृशं वाक्यं आवयोर्मरणं ध्रुवम् ॥ ७० ॥
दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च।
सञ्चरन्ति महाधूर्तास्तरौ वैरोचनं यथा ॥ ७१ ॥

मालनी उवाच।

रहस्यं वर्तते कान्त! रात्रौ कोऽपि न विद्यते।
मच्चित्तमुत्सुकं पातुं श्रवणे वाक्यमद्भुतम् ॥ ७२ ॥

माली उवाच।

प्रधानो भूमिपालश्च द्वावेव क्रीडनं गतौ।
प्रधानेन हतो राजा मया शाखा प्रकम्पिता ॥ ७३ ॥

सर्वं संक्षेपतो ह्युक्तं मालिना सुन्दरीं प्रति ।
सर्वमाकर्ण्य तद्राजा समायातः स्ववेश्मनि ॥ ७४ ॥
प्रातःकाले च सम्प्राप्ते चिन्तयामास मानसे ।
किं करोमि क्व गच्छामि पितादुःखोऽतिदुःसहः ॥ ७५ ॥
कं वदामि निजं दुःखं न च शक्नोमि गोपितुम् ।
मारणीयः कथं मन्त्री पापिष्ठः स्वामिघातकः ॥ ७६ ॥
नृपेनैव मिषं कृत्वा पूत्कारं च चकार सः ।
मृतोऽस्मीति मृतोऽस्मीति केचिद् धावत धावत ॥ ७७ ॥
ततः कोलाहलं जातं सर्वे लोकाः ससम्भ्रमाः ।
मन्त्रिमुख्याः समायाता हाहारवसमाकुलाः ॥ ७८ ॥
किमिदं ब्रूहि भूपाल ! कष्टं ते कुत्र विद्यते ।
उपायान्नपि कुर्वीमः सर्वैर्जीवैर्निजैर्निजैः ॥ ७९ ॥

राजोवाच ।

महच्छूलं समुत्पन्नं हृदये दारुणं भृशम् ।
सद्यःप्राणहरं घोरं किं करोमीति बान्धवाः ! ॥ ८० ॥
श्रुत्वा ते दुःखिताः सर्वे हा हा दैवेन किं कृतम् ? ।
देवो वा व्यंतरो कोऽपि कुपितो ज्ञायतेऽधुना ॥ ८१ ॥
यतो पुरा हतो नन्दः छलरूपेण केनचित् ।
तदर्थं युज्यते कर्तुं शान्तिकं पौष्टिकं तथा ॥ ८२ ॥
एतदाकर्ण्य राज्ञोक्तं वर्तते भूरि भूतवित् ।
अस्मिन्नेव पुरे माली शीघ्रमाकारणीयः सः ॥ ८३ ॥
सोऽपि आकारितो शीघ्रं माली वै राजसेवकैः ।
भूरि सत्कारितः सोऽपि निषण्णो राजसन्निधौ ॥ ८४ ॥
अत्रान्तरे च भूमीशो वेगं मुक्त्वा बहिर्ययौ ।
आकारि जनमात्मीयं किञ्चिद्वै उक्तवानहो ॥ ८५ ॥
आहूय सुभटान् भद्र ! सायुधानत्र रक्ष च ।
दीयतामर्गला द्वारे दृढा मा यातु को बहिः ॥ ८६ ॥
एवमागत्य तत्रैव राजा वदति मालिने ।
वृत्तान्तं रात्रिजं सर्वं सर्वेषामग्रतो वद ॥ ८७ ॥

तेनापि च तथैवोक्तं यथोक्तं वै स्त्रिया समम् ।
भीत(ति)वातहतो मन्त्री रम्भा(सभा)स्थाने प्रकम्पितः ।। ८८ ।।
एक(त)दाकर्ण्य सर्वेऽपि कुपिता मन्त्रिमारणे ।
निवारिता नृपेणैव तद्वने गन्तुकामिना ।। ८९ ।।
स माली मन्त्रिराजेन्द्रजनयूथपरिश्वृतः ।
गतस्तत्रैव उद्याने मृतको यत्र तिष्ठति ।। ९० ।।
घृकैर्विदारितश्चैव शृगालैश्चापि भक्षितः ।
काकैश्च चुण्टितं दृष्ट्वा हाहाकारपरो नृपः ।। ९१ ।।
नानाभक्ष्यैश्च भोज्यैश्च नानागन्धैर्विलेपनैः ।
भूषणैर्विविधैर्वस्त्रैः पोषितं तदिदं वपुः ।। ९२ ।।
ततः मृतकमादाय दृढं बद्ध्वा च मन्त्रिणम् ।
हृदन्तःपितृशोकेन [1]पितृभूमौ गतो नृपः ।। ९३ ।।
कृत्वा संस्कारकर्म च प्रविवेश निजं पुरम् ।
मन्त्रिणं रासभारूढं कृत्वा सर्वत्र भ्राम्य च ।। ९४ ।।
चतुष्पथे समानीत्वा खण्डं खण्डं चकार सः ।
पापी पापेन पच्यते लोकभाषा गरीयसी ।। ९५ ।।
एवं कृत्वा गतो राजा राजचिन्तां चकार सः ।
धर्मेण पालयामास प्रजानां(प्रजां हि) पुत्रवत् सदा ।। ९६ ।।
विरक्तो वै अधर्मेभ्यः परस्त्रीभ्यो विशेषतः ।
परदाराभिलाषी च यस्मान्नन्दः क्षयं गतः ।। ९७ ।।
एवमन्येऽपि ये केचित् परदाररता नराः ।
क्षयं यास्यन्ति लोकेऽस्मिन् यथा नन्दो नराधिपः ।। ९८ ।।
इति श्रीनन्द भूपस्य कथा वैरोचनस्य च ।
सहस्रऋषिणा प्रोक्ता सालकोटनिवासिना ।। ९९ ।।
६ ६ ६ १
रसऋत्वङ्गभूम्यब्दे मासे भाद्रपदे सिते ।
त्रयोदश्यां भृगौ वारे पूर्णा जाता तदा इयम् ।। १०० ।।

॥ नन्दकथा समाप्ता ॥

---

१ "स्मशाने" टिप्पणी ।